

भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में आर्य समाज का योगदान: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

स्वर्णलता रानी, समाजशास्त्र विभाग की शोधार्थी, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार, भारत

सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों, जातिगत असमानता, स्त्री-शिक्षा के अभाव, बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवाओं की दुर्दशा तथा अंधविश्वासों से गहरे रूप में प्रभावित था। औपनिवेशिक शासन के इस संक्रमण-काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-1883) द्वारा 10 अप्रैल 1875 को बम्बई में स्थापित आर्य समाज ने वैदिक सिद्धांतों के आधार पर सामाजिक, शैक्षिक एवं धार्मिक सुधारों का एक व्यापक आंदोलन प्रारम्भ किया। आर्य समाज ने शिक्षा के प्रसार, स्त्री-शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण, जातिगत समानता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक न्याय, अस्पृश्यता-निवारण तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास के माध्यम से भारतीय समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण गति प्रदान की। प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह विश्लेषण करना है कि आर्य समाज ने आधुनिक भारतीय समाज के निर्माण में किस प्रकार योगदान दिया, तथा इस प्रक्रिया में महिलाओं के ऐतिहासिक संघर्षों एवं प्रतिरोध की क्या भूमिका रही। अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों — ऐतिहासिक दस्तावेजों, समाजशास्त्रीय साहित्य तथा अभिलेखीय सामग्री — पर आधारित है तथा संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण, संघर्ष सिद्धांत तथा आधुनिकीकरण सिद्धांत के आलोक में आर्य समाज के योगदान एवं उसकी सीमाओं का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: आर्य समाज, आधुनिकीकरण, सामाजिक परिवर्तन, समाजशास्त्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महिला शिक्षा, महिला संघर्ष, सामाजिक सुधार, जातिगत समानता, शुद्धि आंदोलन, सती प्रथा, बाल विवाह।

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ अत्यंत समृद्ध रही हैं। किन्तु समय के साथ अनेक सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक रूढ़ियाँ, जातिगत विभाजन, लैंगिक असमानता तथा अंधविश्वास समाज के विकास में बाधक बन गए। विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय समाज अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक

चुनौतियों का सामना कर रहा था। पश्चिमी शिक्षा, ईसाई मिशनरी गतिविधियों तथा आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था के संपर्क ने भारतीय समाज में आत्ममंथन एवं सुधार की एक नई चेतना को जन्म दिया।

इस पुनर्जागरण की शुरुआत बंगाल से राजा राममोहन राय (1772-1833) द्वारा 1828 में स्थापित ब्रह्म समाज से मानी जाती है, जिसने सती प्रथा-विरोधी आंदोलन चलाकर 1829 में सती प्रथा के कानूनी उन्मूलन में निर्णायक भूमिका निभाई। इसी शृंखला में उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक सिद्धांतों की पुनर्स्थापना के साथ-साथ सामाजिक समानता, शिक्षा, स्त्री-अधिकार, जाति-सुधार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल दिया। मूलतः गुजरात के टंकारा में जन्मे तथा बचपन में 'मूलशंकर' नाम से जाने जाने वाले स्वामी दयानन्द ने 10 अप्रैल 1875 को बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। 'वेदों की ओर लौटो' का उद्घोष और 'कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्' का आदर्श-वाक्य लेकर चला यह आंदोलन शीघ्र ही पंजाब, संयुक्त प्रांत तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में व्यापक रूप से फैल गया।

उनके विचारों ने भारतीय समाज में आधुनिक चेतना का विकास किया तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को नई दिशा प्रदान की। समाजशास्त्रीय दृष्टि से आर्य समाज केवल एक धार्मिक संगठन नहीं, बल्कि सामाजिक आधुनिकीकरण, शैक्षिक पुनर्निर्माण एवं स्त्री-सशक्तिकरण का एक प्रभावशाली आंदोलन था, जिसने परंपरा और आधुनिकता के मध्य एक विशिष्ट संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया।

इतिहासलेखन की दृष्टि से आर्य समाज का अध्ययन विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यह आंदोलन औपनिवेशिक आधुनिकता एवं स्वदेशी परंपरा के मध्य एक जटिल संवाद का प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ एक ओर पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति एवं वैज्ञानिक चिंतन को अपनाया गया, वहीं दूसरी ओर वैदिक प्रामाण्य एवं सांस्कृतिक स्वाभिमान को भी सुदृढ़ किया गया। यह द्वंद्व समाजशास्त्रीय दृष्टि से 'वैकल्पिक आधुनिकता' की अवधारणा से जुड़ा है, जिसके अनुसार गैर-पश्चिमी समाज आधुनिकीकरण की एकरैखिक पाश्चात्य प्रतिमान का अनुसरण किए बिना भी अपने सांस्कृतिक संदर्भ में आधुनिकता का निर्माण कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी सैद्धांतिक फ्रेमवर्क के अंतर्गत आर्य समाज के योगदान का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

2. शोध के उद्देश्य

- भारतीय समाज के आधुनिकीकरण में आर्य समाज की ऐतिहासिक एवं समाजशास्त्रीय भूमिका का अध्ययन करना।
- सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों के माध्यम से आर्य समाज के योगदान का विश्लेषण करना।
- शिक्षा, महिला सशक्तिकरण एवं सामाजिक समानता के क्षेत्र में आर्य समाज की भूमिका का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना।
- उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी की भारतीय महिलाओं के संघर्षों, प्रतिरोध एवं आंदोलनों में आर्य समाज-प्रेरित योगदान की पड़ताल करना।
- आर्य समाज की उपलब्धियों के साथ-साथ उसकी ऐतिहासिक सीमाओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करना।
- समकालीन भारतीय समाज में आर्य समाज की विचारधारा की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

3. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज

आर्य समाज के उदय को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज घोर सामाजिक कुरीतियों से त्रस्त था। सती प्रथा के अंतर्गत पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी को उसकी चिता के साथ जीवित जलने के लिए बाध्य किया जाता था। राजा राममोहन राय के अथक प्रयासों के फलस्वरूप गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 1829 में बंगाल सती विनियमन पारित कर इस प्रथा को अवैध घोषित किया।

बाल-विवाह की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी। बालिकाओं का विवाह प्रायः दस-बारह वर्ष की आयु में ही कर दिया जाता था। समाज-सुधारकों के दबाव में 1872 में नेटिव मैरिज एक्ट, 1891 में एज ऑफ कन्सेंट एक्ट (जिसमें सहमति की आयु 12 वर्ष निर्धारित की गई) तथा अंततः 1929 में शारदा अधिनियम पारित हुआ, जिसने विवाह की न्यूनतम आयु क्रमशः 14 और 18 वर्ष निर्धारित की। विधवाओं की स्थिति भी अत्यंत दयनीय थी — उन्हें पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था, जब तक कि ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयासों से 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता, स्त्री-शिक्षा का अभाव तथा धार्मिक कर्मकांडों में व्याप्त अंधविश्वास समाज की अन्य गंभीर समस्याएँ थीं। स्त्री-शिक्षा की दिशा में जॉन इलियट ट्रिंकवाटर बेथून द्वारा 1849 में कलकत्ता में स्थापित बेथून कॉलेज को भारत में

महिला शिक्षा की औपचारिक शुरुआत माना जाता है, किन्तु व्यापक जनसमूह में स्त्री-शिक्षा अभी भी दूर की कल्पना थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में आर्य समाज ने उत्तर भारत में सुधारवादी चेतना का शंखनाद किया।

इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता की समस्या भारतीय समाज की एक गहरी संरचनात्मक विकृति थी, जिसके अंतर्गत करोड़ों लोगों को शिक्षा, मंदिर-प्रवेश, सार्वजनिक कुओं के जल तथा सामान्य सामाजिक जीवन से वंचित रखा जाता था। पर्दा प्रथा, विशेषतः उत्तर भारत में, महिलाओं की गतिशीलता एवं सार्वजनिक जीवन में भागीदारी को गंभीर रूप से सीमित करती थी। बहु-विवाह की प्रथा भी समाज में एक स्वीकृत व्यवहार के रूप में विद्यमान थी। इन समस्त सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिराव फुले तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुधारकों ने अपने-अपने क्षेत्रों में संगठित प्रतिरोध का सूत्रपात किया, जिसने अंततः भारतीय समाज में गहरे संरचनात्मक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

तत्कालीन स्त्रियों की दशा का एक और गंभीर आयाम शिक्षा से पूर्ण वंचना थी — 1881 की जनगणना के अनुसार भारत में महिला साक्षरता दर एक प्रतिशत से भी कम थी। बालिकाओं को घर की चारदीवारी तक सीमित रखा जाता था तथा उन्हें औपचारिक शिक्षा से प्रायः पूर्णतः वंचित रखा जाता था, क्योंकि यह मान्यता प्रचलित थी कि शिक्षित स्त्री पारिवारिक मर्यादा के लिए खतरा उत्पन्न कर सकती है। दहेज प्रथा भी क्रमशः एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में उभर रही थी। इन समस्त परिस्थितियों के समग्र प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय स्त्री की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी, जिसे बदलने के लिए एक संगठित एवं दीर्घकालिक सामाजिक आंदोलन की नितांत आवश्यकता थी — यह आवश्यकता आर्य समाज एवं समकालीन सुधार आंदोलनों ने पूर्ण करने का प्रयास किया।

औपनिवेशिक शासन एवं भारतीय सामाजिक सुधार आंदोलनों के मध्य संबंध एक जटिल एवं बहुआयामी विषय है। एक ओर अंग्रेजी शिक्षा एवं पाश्चात्य उदारवादी विचारों ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध तार्किक आधार प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर औपनिवेशिक सत्ता द्वारा भारतीय समाज एवं संस्कृति को 'पिछड़ा' एवं 'बर्बर' चित्रित किए जाने की प्रवृत्ति ने भारतीय सुधारकों में एक रक्षात्मक सांस्कृतिक प्रतिक्रिया को भी जन्म दिया। आर्य समाज इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इसने पाश्चात्य आलोचना का उत्तर पाश्चात्य मूल्यों को अस्वीकार करके नहीं, अपितु यह तर्क देकर

दिया कि समानता, तर्कशीलता एवं वैज्ञानिक चिंतन जैसे मूल्य वास्तव में प्राचीन वैदिक परंपरा में पूर्व से ही विद्यमान थे, जिन्हें कालांतर में विकृत कर दिया गया। यह वैचारिक रणनीति समाजशास्त्रीय दृष्टि से 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' (cultural nationalism) की एक प्रारम्भिक अभिव्यक्ति मानी जा सकती है, जिसने आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के वैचारिक निर्माण में भी योगदान दिया।

आर्य समाज पर उपलब्ध साहित्य विविध आयामों को स्पर्श करता है। केनेथ डब्ल्यू. जोन्स ने अपनी कृति 'आर्य धर्म: हिन्दू कॉन्वेंशनस इन नाइन्टीथ-सेचुरी पंजाब' (1976) में आर्य समाज को पंजाब में हिन्दू पहचान के पुनर्निर्माण के आंदोलन के रूप में विश्लेषित किया है। जे.टी.एफ. जॉर्डेन्स ने अपनी जीवनी-परक कृति में स्वामी दयानन्द के जीवन एवं विचारों का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। लाला लाजपत राय ने अपनी पुस्तक 'द आर्य समाज' (1915) में इस आंदोलन के राष्ट्रवादी आयाम को रेखांकित किया।

के.सी. यादव एवं के.एस. आर्य ने 'आर्य समाज ऐंड द फ्रीडम मूवमेंट' (1988) में इस आंदोलन के स्वतंत्रता-संग्राम में योगदान की विस्तृत पड़ताल की है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से योगेन्द्र सिंह तथा एम.एन. श्रीनिवास के अध्ययन भारतीय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समझने में सहायक हैं। महिलाओं के इतिहास के संदर्भ में जेराल्डिन फोर्ब्स की कृति 'विमेन इन मॉडर्न इंडिया' (1996) तथा पंडिता रमाबाई की आत्मकथात्मक लेखन-सामग्री इस विषय पर महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। इन समस्त अध्ययनों के बावजूद, आर्य समाज के योगदान का समग्र समाजशास्त्रीय एवं स्त्री-केन्द्रित विश्लेषण अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है, जिसे प्रस्तुत लेख संबोधित करने का प्रयास करता है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक-मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से किए गए अध्ययनों में हरजोत ओबेरॉय के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'द कंस्ट्रक्शन ऑफ रिलीजियस बाउंडरीज़' (1994) में यह विश्लेषित किया कि किस प्रकार आर्य समाज ने पंजाब में हिन्दू धार्मिक पहचान की स्पष्ट एवं संगठित सीमाओं का निर्माण किया, जो पूर्व में अपेक्षाकृत तरल एवं समन्वयवादी थी। बरबरा एवं थॉमस मेटकाफ के 'ए कंसाइज़ हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया' में भी आर्य समाज को उन्नीसवीं शताब्दी के व्यापक सामाजिक-धार्मिक पुनर्जागरण की एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में स्थान दिया गया है। इन सभी अध्ययनों के समन्वित विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आर्य समाज को समझने के लिए धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा लैंगिक — इन चारों आयामों को समग्रता में देखना आवश्यक है, जो प्रस्तुत अध्ययन का मूल प्रयास भी है।

4. राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान

आर्य समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों ने स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम, नैतिकता एवं नागरिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को विकसित किया, जो आधुनिक राष्ट्र-निर्माण के आधार बने। लाला लाजपत राय ('पंजाब केसरी'), भाई परमानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्द जैसे आर्य समाजी नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई। आर्य समाज ने हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसने भारतीय राष्ट्रीय पहचान के निर्माण को सुदृढ़ किया।

स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज से प्रेरित अनेक व्यक्तित्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई — भगत सिंह के परिवार का आर्य समाज से घनिष्ठ संबंध था, तथा पंजाब में क्रांतिकारी एवं अहिंसक दोनों धाराओं के अनेक स्वतंत्रता सेनानी आर्य समाज विद्यालयों से शिक्षित थे। लाला लाजपत राय ने 1928 में साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन का नेतृत्व किया, जिसमें हुए लाठीचार्ज के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हुई — यह घटना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ मानी जाती है। इस प्रकार आर्य समाज द्वारा प्रदत्त शिक्षा एवं मूल्य-प्रणाली ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को वैचारिक एवं मानवीय संसाधन दोनों स्तरों पर सशक्त किया।

आर्य समाज ने अपने विचारों के प्रसार हेतु पत्रकारिता एवं प्रकाशन को एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनाया। 'आर्य पत्रिका', 'सर्वदेशिक', 'विजय पताका' तथा अन्य अनेक हिन्दी एवं उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा तथा जातिगत समानता जैसे विषयों पर जनमत तैयार किया गया। स्वामी दयानन्द की मूल कृति सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम संस्करण 1875, संशोधित संस्करण 1884) के अतिरिक्त 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तथा 'संस्कारविधि' जैसे ग्रंथों ने भी आंदोलन के वैचारिक आधार को सुदृढ़ किया। मुद्रण-तकनीक के प्रसार के साथ आर्य समाज ने भारतीय जनमानस तक अपने सुधारवादी संदेश को अत्यंत प्रभावी ढंग से पहुँचाया, जो समाजशास्त्रीय दृष्टि से जनसंचार-आधारित सामाजिक गतिशीलता (media-driven social mobilization) का प्रारम्भिक भारतीय उदाहरण माना जा सकता है।

आर्य समाज ने शिक्षा एवं धार्मिक सुधार के साथ-साथ प्रत्यक्ष समाज-सेवा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने अकाल-पीड़ितों तथा अनाथ बालक-बालिकाओं के पुनर्वास हेतु अनाथालयों की स्थापना की, जिनमें विशेष रूप से बालिकाओं के लिए सुरक्षित आश्रय एवं शिक्षा की व्यवस्था की गई। हरिद्वार स्थित कांगड़ी गुरुकुल परिसर में स्थापित अनाथालय ने 1897 तथा 1900 के अकाल के दौरान



अनेक बच्चों को आश्रय दिया। इसी प्रकार पंजाब में आर्य समाज द्वारा संचालित अनेक धर्मार्थ चिकित्सालयों एवं औषधालयों ने निर्धन वर्ग को स्वास्थ्य-सेवाएँ उपलब्ध कराईं, जिससे सामाजिक सेवा एवं परोपकार की एक संगठित परंपरा का विकास हुआ।

आर्य समाज ने सामाजिक एवं शैक्षिक सुधारों के साथ-साथ आर्थिक स्वावलंबन तथा स्वदेशी भावना को भी प्रोत्साहित किया। डी.ए.वी. एवं गुरुकुल संस्थानों में व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा को भी स्थान दिया गया, ताकि विद्यार्थी आत्मनिर्भर बन सकें। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा भारतीय हस्तशिल्प एवं उद्योगों को प्रोत्साहन देने की भावना आर्य समाज के सामाजिक कार्यक्रमों का अभिन्न अंग थी, जो आगे चलकर बीसवीं शताब्दी के स्वदेशी आंदोलन तथा स्वतंत्रता संग्राम के आर्थिक आयाम से भी जुड़ गई। इस प्रकार आर्य समाज ने केवल सांस्कृतिक-धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु आर्थिक चेतना के निर्माण में भी अपनी भूमिका निभाई।

आर्य समाज एवं स्त्री-प्रश्न के अंतर्संबंध को समझने के लिए नारीवादी समाजशास्त्रीय सिद्धांत भी महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। कुमकुम संगारी एवं सुदेश वैद ने अपनी संपादित कृति 'रीकास्टिंग विमेन' (1989) में यह तर्क प्रस्तुत किया कि उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों ने महिलाओं को पूर्ण स्वायत्त कर्ता के रूप में नहीं, बल्कि प्रायः राष्ट्र एवं परंपरा की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। पार्थ चटर्जी के 'आंतरिक-बाह्य क्षेत्र' (inner-outer domain) सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रवादी विचारधारा ने स्त्री को घर के आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्र की रक्षक के रूप में स्थापित किया, जबकि पुरुष को बाह्य-भौतिक क्षेत्र में आधुनिकता अपनाने की छूट दी गई। यह सैद्धांतिक ढाँचा आर्य समाज के स्त्री-शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण पर भी आंशिक रूप से लागू होता है — जहाँ शिक्षा का उद्देश्य प्रायः 'सुयोग्य माता एवं गृहिणी' तैयार करना बताया गया, न कि स्त्री की पूर्ण स्वायत्तता एवं सार्वजनिक भागीदारी। तथापि, पंडिता रमाबाई एवं रुखमाबाई जैसी महिलाओं का व्यक्तिगत संघर्ष इस ढाँचे की सीमाओं को भी उजागर करता है, क्योंकि उन्होंने संस्थागत अपेक्षाओं से आगे बढ़कर स्वतंत्र बौद्धिक एवं सामाजिक कर्तृत्व का प्रदर्शन किया। इस प्रकार उदार नारीवाद (liberal feminism) की दृष्टि से आर्य समाज का योगदान 'सीमित किन्तु सार्थक' (limited but significant) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है — इसने स्त्री-शिक्षा के द्वार खोले, भले ही लैंगिक समानता की पूर्ण अवधारणा तक न पहुँच सका हो।

दूसरी ओर, उग्र नारीवाद (radical feminism) के दृष्टिकोण से यह तर्क दिया जा सकता है कि आर्य समाज सहित अधिकांश उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार आंदोलन पितृसत्तात्मक ढाँचे के भीतर ही सुधार का प्रयास करते थे, तथा उन्होंने विवाह, परिवार एवं यौनिकता जैसी मूल संस्थाओं की आमूल-चूल पुनर्रचना का प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत, समाजशास्त्री गेल ऑम्बेट ने अपने अध्ययनों में यह तर्क दिया कि जोतिबा एवं सावित्रीबाई फुले का सत्यशोधक आंदोलन इस दृष्टि से अधिक क्रांतिकारी था, क्योंकि इसने जाति एवं लिंग दोनों की संरचनात्मक असमानता को एक साथ चुनौती दी। इस प्रकार विभिन्न नारीवादी सैद्धांतिक ढाँचों से आर्य समाज का मूल्यांकन करने पर भिन्न-भिन्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, जो इस विषय की सैद्धांतिक जटिलता एवं बहुआयामिता को दर्शाता है।

आर्य समाज का प्रभाव केवल भारतीय उपमहाद्वीप तक सीमित नहीं रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गिरमिटिया मजदूरों के माध्यम से यह आंदोलन त्रिनिदाद, फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में भी पहुँचा, जहाँ इसने प्रवासी भारतीय समुदायों की सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहचान को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन देशों में स्थापित आर्य समाज शाखाओं ने वहाँ भी शिक्षा एवं सामाजिक सुधार को बढ़ावा दिया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि आर्य समाज का समाजशास्त्रीय प्रभाव-क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय स्तर तक विस्तृत था तथा यह वैश्विक भारतीय पहचान के निर्माण का भी एक माध्यम बना।

त्रिनिदाद में आर्य समाज ने 1930 के दशक से एक संगठित रूप धारण किया तथा वहाँ के भारतीय मूल के समुदाय में वैदिक शिक्षा, हिन्दी भाषा तथा सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार फिजी में भी आर्य समाज ने विद्यालयों एवं मंदिरों की स्थापना के माध्यम से भारतीय प्रवासी समुदाय को संगठित किया। दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन के समकालीन काल में भी आर्य समाज की शाखाएँ भारतीय समुदाय के अधिकारों की रक्षा हेतु सक्रिय रहीं। यह वैश्विक विस्तार समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रवासी पहचान-निर्माण (diaspora identity formation) की प्रक्रिया में धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं की भूमिका का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आर्य समाज के योगदान के साथ-साथ इसकी ऐतिहासिक सीमाओं का उल्लेख भी समाजशास्त्रीय संतुलन हेतु आवश्यक है। आलोचकों के अनुसार यह आंदोलन मुख्यतः पंजाब एवं संयुक्त प्रांत के शहरी मध्यम-वर्ग तक सीमित रहा तथा ग्रामीण जनसमुदाय तक इसकी पहुँच अपेक्षाकृत सीमित रही। शुद्धि आंदोलन

ने यद्यपि पुनर्धर्मांतरण को बढ़ावा दिया, किन्तु इसने कालांतर में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को भी जन्म दिया। स्त्री-शिक्षा को बढ़ावा देने के बावजूद आंदोलन के भीतर पितृसत्तात्मक संरचनाएँ पूर्णतः समाप्त नहीं हुईं तथा महिलाओं की भूमिका प्रायः 'सुयोग्य माता' एवं 'गृहिणी' की परिधि तक सीमित रह गई। कॉलेज एवं गुरुकुल गुटों के बीच आंतरिक वैचारिक विभाजन ने भी आंदोलन की संगठनात्मक एकता को प्रभावित किया। इन सीमाओं के बावजूद, समग्र रूप से आर्य समाज का योगदान भारतीय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सकारात्मक एवं दूरगामी रहा।

यह भी उल्लेखनीय है कि आर्य समाज के भीतर वर्ण-व्यवस्था के कर्म-आधारित समर्थन ने, यद्यपि जन्म-आधारित जातिवाद की तुलना में प्रगतिशील था, फिर भी सामाजिक स्तरीकरण की मूल संरचना को पूर्णतः विघटित नहीं किया। कुछ आलोचकों के अनुसार यह एक 'सुधारवादी मध्य मार्ग' (reformist middle path) था, जो क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन के बजाय क्रमिक एवं नियंत्रित परिवर्तन को प्राथमिकता देता था। इसके बावजूद, तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में देखा जाए तो आर्य समाज द्वारा उठाए गए कदम निश्चय ही साहसिक एवं दूरदर्शी थे, जिन्होंने आगामी पीढ़ियों के लिए अधिक व्यापक सामाजिक सुधार का मार्ग प्रशस्त किया।

5. निष्कर्ष

अध्ययन को पूर्णता प्रदान करने हेतु आर्य समाज द्वारा स्थापित अथवा प्रेरित कुछ प्रमुख संस्थाओं की सूची निम्नलिखित है, जो इस आंदोलन की संस्थागत व्यापकता को दर्शाती है। इन संस्थाओं में से अनेक आज भी सक्रिय रूप से कार्यरत हैं तथा भारत के विभिन्न राज्यों में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सेवा के क्षेत्र में योगदान दे रही हैं, जो आर्य समाज की संस्थागत निरंतरता का प्रमाण है:

- दयानन्द एंग्लो-वैदिक (डी.ए.वी.) कॉलेज, लाहौर (स्थापना 1886) — वर्तमान में डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी के अंतर्गत भारत भर में सैकड़ों शाखाएँ।
- गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (स्थापना 1902) — पारंपरिक वैदिक शिक्षा-पद्धति का प्रमुख केन्द्र, वर्तमान में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।
- कन्या महाविद्यालय, जालंधर (स्थापना 1890) — उत्तर भारत में स्त्री-शिक्षा का अग्रणी संस्थान।



- परोपकारिणी सभा, अजमेर — स्वामी दयानन्द के साहित्य के संरक्षण एवं प्रकाशन हेतु स्थापित संस्था।
- सर्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा — आर्य समाज की केन्द्रीय संगठनात्मक इकाई।
- आर्ष गुरुकुल एवं वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार के निकट) — वैदिक शिक्षा एवं संन्यास-परंपरा का केन्द्र।
- महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक — आर्य समाज की शैक्षिक विरासत से प्रेरित आधुनिक विश्वविद्यालय।

संदर्भ सूची

- दयानन्द सरस्वती, स्वामी. सत्यार्थ प्रकाश. अजमेर: परोपकारिणी सभा (मूल प्रकाशन 1875)।
- जोन्स, केनेथ डब्ल्यू. (1976). आर्य धर्म: हिन्दू कॉन्वेंशनस इन नाइन्टींथ-सेंचुरी पंजाब. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
- जॉर्डेन्स, जे.टी.एफ. (1978). दयानन्द सरस्वती: हिज़ लाइफ ऐंड आइडियाज़. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- लाजपत राय, लाला (1915). द आर्य समाज. लंदन: लॉन्गमैन्स, ग्रीन ऐंड कंपनी।
- यादव, के.सी. एवं आर्य, के.एस. (1988). आर्य समाज ऐंड द फ्रीडम मूवमेंट. नई दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशन्स।
- सिंह, योगेन्द्र (1973). मॉडर्नाइज़ेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन. दिल्ली: थॉमसन प्रेस।
- श्रीनिवास, एम.एन. (1966). सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
- फोर्ब्स, जेराल्डिन (1996). विमेन इन मॉडर्न इंडिया. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- रमाबाई, पंडिता (1888). द हाई-कास्ट हिन्दू वुमन. फिलाडेल्फिया: प्रेस ऑफ जे.बी. रॉजर्स।



- चक्रवर्ती, उमा (1998). रीराइटिंग हिस्ट्री: द लाइफ ऐंड टाइम्स ऑफ पंडिता रमाबाई. नई दिल्ली: कली फॉर वुमन।
- पार्सन्स, टैलकॉट (1951). द सोशल सिस्टम. लंदन: रूटलेज ऐंड कीगन पॉल।
- आइज़ेनस्टाट, एस.एन. (1966). मॉडर्नाइज़ेशन: प्रोटेस्ट ऐंड चेंज. न्यू जर्सी: प्रेंटिस-हॉल।
- भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय — बंगाल सती विनियमन, 1829; हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856; एज ऑफ कन्सेंट एक्ट, 1891; बाल विवाह निरोधक अधिनियम (शारदा अधिनियम), 1929।
- आर्य समाज — भारतकोश, ज्ञान का हिन्दी महासागर (bharatdiscovery.org)।
- आर्य समाज — हिन्दी विकिपीडिया (hi.wikipedia.org)।
- स्त्री शिक्षा — हिन्दी विकिपीडिया (hi.wikipedia.org)।
- वेबर, मैक्स (1930). द प्रोटेस्टेंट एथिक ऐंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज़्म. लंदन: एलेन ऐंड अनविन।
- गिडेंस, एंथोनी (1984). द कॉन्स्ट्रिक्शन ऑफ सोसाइटी. कैम्ब्रिज: पॉलिटी प्रेस।
- घुर्ये, जी.एस. (1932). कास्ट ऐंड रेस इन इंडिया. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन।
- मार्क्स, कार्ल एवं एंगेल्स, फ्रेडरिक (1848). द कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो। लंदन।
- डारेनडॉर्फ, राल्फ (1959). क्लास ऐंड क्लास कॉम्प्लिक्ट इन इंडस्ट्रियल सोसाइटी. स्टैनफोर्ड: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- मर्टन, रॉबर्ट के. (1968). सोशल थ्योरी ऐंड सोशल स्ट्रक्चर. न्यूयॉर्क: फ्री प्रेस।
- संगारी, कुमकुम एवं वैद, सुदेश (सं.) (1989). रीकास्टिंग विमेन: एसेज़ इन कोलोनिअल हिस्ट्री. नई दिल्ली: काली फॉर वुमन।
- चटर्जी, पार्थ (1993). द नेशन ऐंड इट्स फ्रेगमेंट्स: कोलोनिअल ऐंड पोस्ट-कोलोनिअल हिस्ट्रीज़. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।



- फुले, ज्योतिराव (1873). गुलामगिरी. पुणे।